INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF HUMANITIES AND INTERDISCIPLINARY STUDIES
(Peer-reviewed, Refereed, Indexed & Open Access Journal)
DOI : 03.2021-11278686 ISSN : 2582-8568 IMPACT FACTOR : 5.828 (SJIF 2022)

भारतीय समाज में शिक्षा का महत्व
(Importance of Education in Indian Society)

डॉ. राजेन्द्र सिंह
समाजशास्त्र विभाग
लालाराम श्रीदेवी महाविद्यालय,
अतरौली (अलीगढ़)

DOI No. 03.2021-11278686 **DOI Link ::** https://doi-ds.org/doilink/09.2022-32729944/IRJHIS2209001

प्रस्तावना :

सामान्य रूप से दो या दो से अधिक व्यक्तियों के समूह को समाज कहते हैं। व्यक्तियों में इन समूहों का अध्ययन सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है मानव में मनुष्यों के किसी भी समूह को समाज की संज्ञा दी जाती है। यहां बता दें कि आदिम समुदाय को भी समाज की संज्ञा दी जाती है। भूगोल के आधार पर भी समान सभ्यता वाले लोगों के समुदाय को समाज कहते हैं। जैसे– यूरोपीय समाज, एशियाई समाज या भारतीय समाज। धर्म शास्त्र में धर्म के आधार पर समाज का वर्गीकरण किया जाता है। जैसे हिन्दू समाज और मुसलमान समाज। राजनीति शास्त्र में राज्य विशेष के लोगों को समाज कहते हैं जैसे– भारतीय समाज, पाकिस्तानी समाज, नेपाली समाज आदि।

समाजशास्त्र –

समाजशास्त्रीय अर्थ में व्यक्तियों को समाज नहीं कहते अपितु समाज के व्यक्तियों में पाए जाने वाले सामाजिक सम्बन्धों की पारस्परिक व्यवस्था की संरचना को समाज कहते हैं। अब विचारणीय प्रश्न यह है कि सामाजिक सम्बन्ध क्या हैं? जब दो या दो से अधिक व्यक्ति आपस में अपने विचारों, परम्पराओं, अपने लगाव को व्यक्त करता है दूसरा व्यक्ति उस पर अपनी प्रतिक्रिया देता है वहां सामाजिक सम्बन्ध स्थापित होता है। यह आवश्यक नहीं कि यह सम्बन्ध मधुर और सहयोगात्मक ही हों यह कटु और संघर्षात्मक भी हो सकते हैं। समाजशास्त्र में इन दो प्रकार के सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है इस प्रकार समाज का सर्वप्रथम मूल तत्व दो या दो से अधिक व्यक्तियों की पारस्परिक जागरूकता है।

दो या दो से अधिक व्यक्तियों के एक दूसरे के प्रति सचेत होने के लिए आवश्यक है कि उनके उद्देश्य अथवा विचारों में या तो समानता हो या भिन्नता। इस प्रकार समानता अथवा भिन्नता समाज का दूसरा मूल तत्व होता है। यह पारस्परिक जागरूकता दो ही रूपों में परिणित हो सकती है। सहयोग में अथवा संघर्ष में इसलिए सहयोग अथवा संघर्ष को समाज का तीसरा मूल तत्व माना जाता है। वस्तुतः यह है कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक दूसरे के प्रति सचेत होते हैं और वह तब तक इन सम्बन्धों से नहीं बनते जब

तक उनकी एक दूसरे से अपनी आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती इसे समाजशास्त्री अन्योन्याश्रित कहते हैं।

एक तरफ यदि यह बात सत्य है कि समाज शिक्षा को प्रभावित करती है तो दूसरी तरफ यह भी बात सत्य है कि शिक्षा समाज के स्वरूप को निश्चित करती है और उसकी सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं आर्थिक स्थिति को प्रभावित करती है। शिक्षा मानव समाज की आधारशिला है वह समाज का निर्माण करती है, उसमें परिवर्तन करती है और उसका विकास करती है।

यह समाज का चौथा मूल तत्व होता है समाज के बारे में दो तथ्य और हैं एक तो यह कि समाज अमूर्त होता है और दूसरा यह कि यह केवल मनुष्य जाति में ही नहीं अपितु पशु–पक्षियों और कीड़े–मकोड़ों में भी पाया जाता है। यह बात दूसरी है कि समाजशास्त्र में केवल मानव समाज का ही अध्ययन किया जाता है।
सभी समाजशास्त्री समाज को अमूर्त मानते हैं परन्तु उसकी परिभाषा उन्होंने भिन्न–भिन्न रूप में की है कुछ मुख्य परिभाषाएं प्रस्तुत हैं–

टॉलकाट पारसन्स के शब्दों में – "समाज को पुनः मानवीय सम्बन्धों की पूर्ण जटिलता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। जो साधन तथा साध्य के सम्बन्ध द्वारा क्रिया करने से उत्पन्न होते हैं। वह चाहे वास्तविक हो या प्रतीकात्मक।"

मैकाइवर और पेज के शब्दों में – "समाज रीतियों तथा कार्य प्रणालियों की अधिकार तथा पारस्परिक सहयोग की अनेक समूहों और विभागों की मानव व्यवहार के नियन्त्रण और स्वतन्त्रताओं की एक व्यवस्था है इस सतत् परिवर्तनशील व्यवस्था को हम समाज कहते हैं।"

इसी बात को उन्होने आगे संक्षिप्त रूप में इस प्रकार कहा है कि– "समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है जो सदैव बदलता रहता है।"

लापियर के शब्दों में – "समाज से तात्पर्य व्यक्तियों के समूह से नहीं अपितु समूह के व्यक्तियों के बीच होने वाली अंतक्रिया की जटिल व्यवस्था से है।

समाज और एक समाज –

समाजशास्त्र में समाज और एक समाज भिन्न–भिन्न अर्थों में प्रयोग होते हैं। समाज का अर्थ समूह के व्यक्तियों के बीच सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था से होता है। जबकि एक समाज से तात्पर्य सामाजिक सम्बन्धों से बँधे व्यक्तियों के समूह से होता है। स्पष्ट है कि समाज अमूर्त होता है और एक समाज मूर्त लेकिन व्यक्तियों के प्रत्येक समूह को एक समाज नहीं कहा जाता। एक समाज व्यक्तियों का ऐसा संगठन होता है, जो कुछ उद्देश्यों की पूर्ति के लिए गठित होता है। जैसे– जैन समाज, भरतीय समाज, हिन्दू समाज आदि।

श्री मेन्जर ने लिखा है कि– "एक समाज व्यक्तियों का एक ऐसा समूह होता है जिसमें सभी व्यक्ति किसी सामान्य कार्य में सचेत रूप से भाग लेते हैं।"

समाज एवं शिक्षा में अन्तर –

समाज और शिक्षा में एक अटूट सम्बन्ध है किन्तु हम समाज और शिक्षा के आपसी सम्बन्ध पर विचार करते हैं। भले ही हम शिक्षा व समाज के वर्तमान स्वरूप से परिचित हैं समाजशास्त्रीय भाषा में समाज एक संप्रत्यय है समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है। सामान्य तौर पर दो या दो से अधिक व्यक्तियों से मिलकर बने सामाजिक सम्बन्धों को समाज कहते हैं। आज संसार के प्रायः सभी राष्ट्रों में शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य

का उत्तरादायित्व माना जाता है और इस दृष्टि से राज्य विशेष की सम्पूर्ण जनता ही उस राज्य का समाज होती है। आज जब हम शिक्षा के सन्दर्भ में समाज की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य राज्य अथवा राष्ट्र विशेष की सम्पूर्ण जनता से ही होता है।

जब हम इस प्रकार के किसी समाज का अध्ययन करते हैं तो उसके अन्तर्गत घटक व्यक्ति, व्यक्ति–व्यक्ति, समूह और समूह के सामाजिक सम्बन्धों अथवा सामाजिक अन्तःक्रियाओं का ही अध्ययन करते हैं तथ्य यह है कि जैसा समाज होता है वैसी उसकी शिक्षा होती है और जैसी किसी समाज की शिक्षा होती है वैसा ही वह समाज बन जाता है।

समाज का शिक्षा पर प्रभाव –

प्रत्येक समाज अपनी मान्यताओं एवं आवश्यकताओं के अनुकूल ही अपनी शिक्षा की व्यवस्था करता है और समाज की मान्यताएं एवं आवश्यकताएं उसकी भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती हैं। समाज में होने वाले परिवर्तन भी उसके स्वरूप एवं आवश्यकताओं को बदलते हैं और उनके अनुसार उसकी शिक्षा का स्वरूप भी बदलता रहता है जिनका संक्षेप में वर्णन निम्न प्रकार है–

1. समाज की भौगोलिक स्थिति और शिक्षा –

किसी भी समाज का जीवन उसकी भौगोलिक स्थिति से प्रभावित होता है। तब उसकी शिक्षा भी उससे प्रभावित होना स्वाभाविक है। जिन समाजों में भौगोलिक स्थिति ऐसी होती है कि उसमें मनुष्य को जीवन रक्षा के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ता है, उसमें अधिकतर व्यक्तियों के पास शिक्षा के लिए ना समय होता है और ना धन, परिणामस्वरूप उनमें जन शिक्षा की व्यवस्था नहीं होती और शिक्षा का क्षेत्र भी सीमित होता है। इसके विपरीत जिन समाजों की भौगोलिक स्थिति मानव के अनुकूल होती है और प्राकृतिक संसाधन भरपूर होते हैं उनमें व्यक्तियों के पास शिक्षा के लिए समय एवं धन दोनों होते हैं परिणामस्वरूप उनमें शिक्षा की उचित व्यवस्था होती है।

यह तथ्य भी सर्वविदित है कि जिस देश में जैसे प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध होते हैं उनमें वैसे ही उद्योग–धंन्धे पनपते हैं और उन्हीं के अनुकूल वहां की शिक्षा व्यवस्था की जाती है। कृषि प्रधान देशों में कृषि शिक्षा और उद्योग प्रधान देशों में औद्योगिक शिक्षा पर बल दिया जाता है।

2. समाज की संरचना और शिक्षा –

भिन्न–भिन्न समाजों के स्वरूप भिन्न–भिन्न होते हैं। कुछ समाजों में जातियां होती है, और कुछ में जाति भेद भी। कुछ में जातियां होती हैं परन्तु जातिभेद नहीं होता और कुछ में जातियां ही नहीं होती हैं। इस प्रकार कुछ समाजों में कुलीन और निम्नवर्ग होता है और कुछ समाजों में नहीं होता, समाज विशेष के इस स्वरूप का उसकी शिक्षा पर प्रभाव पड़ता है। अपने भारतीय समाज को ही लीजिए जब इसमें कठोर वर्ण व्यवस्था थी तब शूद्रों को उच्च शिक्षा से वंचित रखा जाता था और आज जब वर्ण भेद में विश्वास नहीं किया जाता तो समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए शिक्षा की समान सुविधाएं उपलब्ध कराने का नारा बुलन्द है।

3. समाज की संस्कृति और शिक्षा –

भिन्न–भिन्न अनुशासनों में संस्कृति को भिन्न–भिन्न अर्थ में देखा और समझा गया है परन्तु आधुनिक

परिप्रेक्ष्य में किसी समाज की संस्कृति से तात्पर्य उसके रहन–सहन एवं खान–पान की विधियों, व्यवहार प्रतिमानों आचार–विचार, रीति–रिवाज, कला–कौशल, संगीत–नृत्य भाषा साहित्य धर्म–दर्शन आदर्श विश्वास और मूल्यों के उस विशिष्ट रूप से होता है, जिसमें उसकी आस्था होती है। और जो उसकी पहचान होती हैं किसी समाज की शिक्षा पर सर्वाधिक प्रभाव उसकी संस्कृति का ही होता है। किसी भी समाज की शिक्षा के उद्देश्य उसके धर्म दर्शन, आदर्श विश्वास और उसकी आकांक्षाओं के आधार पर ही निश्चित किये जाते हैं उसकी शिक्षा की पाठ्यचर्या में सर्वाधिक महत्व उसकी भाषा साहित्य और धर्म दर्शन को दिया जाता है और शिक्षा संस्थाओं में यथा व्यवहार प्रतिमानों को अपनाया जाता है।

4. समाज की धार्मिक स्थिति और शिक्षा –

वैसे तो धर्म संस्कृति का अंग होता है परन्तु यहां इसको अलग से इसलिए लिया गया है कि आरम्भ से ही शिक्षा पर धर्म का सबसे अधिक प्रभाव रहा है। दूसरी बात यह है कि अब धर्म के विषय में विद्वानों के भिन्न–भिन्न मत है। कुछ उसे शिक्षा का आधार मानने के पक्ष में है और कुछ शिक्षा को धर्म से दूर रखने के पक्ष में हैं। धर्म की दृष्टि से समाजों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है एक वह जिन्हें धर्म विशेष को माना जाता है और दूसरे वह जिनमें अनेक धर्मों का प्रचलन होता है। इन समाजों की शिक्षा व्यवस्था भिन्न–भिन्न होती है।

धर्म विशेष को मानने वाले समाजों के शिक्षा में उनके धर्म की शिक्षा को स्थान दिया जाता है। जैसे मुस्लिम राष्ट्रों में दूसरे प्रकार के समाजों में किसी धर्म विशेष की शिक्षा देना सम्भव नहीं होता उसमें उदार दृष्टिकोंण अपनाया जाता है जैसे– अपने देश भारत में। कुछ समाजों में धर्म शिक्षा को स्थान ही नहीं दिया जाता जैसे– रूस।

5. समाज की राजनीतिक स्थिति और शिक्षा –

समाज की राजनैतिक स्थिति भी शिक्षा को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए एक तंत्र शासन प्रणाली वाले देशों में शिक्षा के द्वारा अन्धे राष्ट्रभक्त तैयार किए जाते हैं जबकि लोकतन्त्र शासन प्रणाली वाले देशों में शिक्षा के द्वारा व्यक्ति को स्वतन्त्र चिंतन और स्वतन्त्र अभिव्यक्ति के लिए तैयार किया जाता है। इसके साथ–साथ एक बात और है वह यह है कि जो समाज राजनीति दृष्टि से सुरक्षित होता है उसकी शिक्षा के उददेश्य व्यापक होते हैं और समाज में राजनीति दृष्टि से असुरक्षा होती है वह केवल सैनिक शक्ति और उत्पादन बढ़ाने पर बल देता है।

6. समाज की आर्थिक स्थिति और शिक्षा –

समाज की आर्थिक स्थिति भी उसकी शिक्षा को प्रभावित करती है। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न समाजों की सुरंग शिक्षा बहुउददेशीय होती है। वह अपने प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करते हैं। जन शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा पर अधिक बल देते हैं। जैसे– भारत आर्थिक दृष्टि से पिछड़े समाज के लिए न अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की बात सोच पाते हैं और जन शिक्षा, न व्यावसायिक शिक्षा की ओर सोच पाते है जैसे बांग्लादेश समाज का अर्थ तन्त्र भी उसकी शिक्षा को प्रभावित करता है। कृषि प्रधान अर्थ तन्त्र में शिक्षा की सम्भावनाएं कम होती है। वाणिज्य प्रधान में अपेक्षाकृत उससे अधिक और उद्योग प्रधान मे सबसे अधिक है।

7. सामाजिक परिवर्तन और शिक्षा –

हम जानते हैं कि समाज परिवर्तनशील है। संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है कि समाज के साथ–साथ उसकी शिक्षा का स्वरूप भी बदलता है। अपने भारतीय समाज को ही ले लीजिए प्राचीन काल में भौतिक आवश्यकताएं कम थीं और आध्यात्मिक पक्ष प्रबल था। इसलिए शिक्षा के क्षेत्र में धर्म और नीतिशास्त्र की शिक्षा पर अधिक बल दिया जाता था परन्तु आज उसकी बहुत ही आवश्यकता बढ़ गई है और आध्यात्मिक पक्ष निर्बल पड़ गया है। इसलिए शिक्षा में विज्ञान एवं तकनीकी को अधिक महत्व दिया जाने लगा है।

कल तक नारियां केवल गृहणी के रूप में रहती थीं इसलिए उन्हें केवल लिखने–पढ़ने एवं घरेलू कार्यों की शिक्षा दी जाती थी। आज वह भी पुरूषों के साथ कन्धा से कन्धा मिलाकर हर क्षेत्र में कार्य करती हैं। अतः उनके लिए पुरूषों की भांति सभी प्रकार की शिक्षा सुलभ है। जब कभी सामाजिक क्रान्ति होती तो वह शिक्षा में आमूल–चूल परिवर्तन कर देती है।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली किसी भी राष्ट्र अथवा समाज में शिक्षा सामाजिक नियंन्त्रण, व्यक्तित्व निर्माण तथा सामाजिक व आर्थिक प्रगति का मापदंड होती है। भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली ब्रिटिश प्रतिरूप पर आधारित है जिसे सन् 1835 ई0 में लागू किया गया था।

इस प्रकार शिक्षा की आधुनिक धारणा के अनुसार "बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास तथा उसमें सामाजिक कुशलता के गुणों का विकास करना ही शिक्षा का मुख्य उददे्श्य है।"

आधुनिक युग में शिक्षा का महत्व –

लोगों को अपना जीवन जीने में और अपने जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए शिक्षा की काफी जरूरत है। शिक्षा जीवन को बेहतर बनाने वाली सम्भावनाओं तक पहुँचाती है। आज सिर्फ ज्ञान प्राप्त करना ही काफी नहीं है, औद्योगीकरण के युग में ज्ञान के प्रयोग पर अधिक बल दिया जाता है, जिसे व्यावहारिक ज्ञान कहा जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. गुप्ता एम.एल., शर्मा डी.डी., 'भारतीय समाज' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा
2. गुप्ता एम.एल., शर्मा डी.डी., 'भारतीय समाज मुद्दे तथा समस्याएं' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा
3. आहूजा राम – सामाजिक समस्याऐं